105285 - उसने ज़ुलहिज्जा के नौ रोज़े रखने की मन्नत मानी है और उसका पति उसे मना कर रहा है

प्रश्न

प्रश्न : लगभग तीन वर्ष हुए, एक महिला ने अपनी शादी होने से पहले मन्नत मानी थी। उसने यह मन्नत मानी थी कि वह हर साल ज़ुल-हिज्जा के पहले नौ दिनों की लगातार रोज़ा रखेगी। उसे मन्नत के अनेच्छिक (मकरूह) होने का ज्ञान नहीं था। और उसे याद नहीं है कि उसने अपनी शादी के बाद के समय को मुस्तस्ना (अपवाद) किया था या उसके मामले को अपने पति के हवाले कर दिया था या नहीं। किन्तु अब उसकी शादी हो गई है और उसका पति उसके रोज़े से मना कर रहा है, क्योंकि वह एक एच्छिक (नफ्ल) रोज़ा है, और उसके लिए बिना उसकी सहमति के उसका रोज़ा रखना जायज़ नहीं है। इसके अतिरिक्त वह स्वास्थिक रूप् से रोज़ा रखने पर सक्षम नहीं है। अब यह महिला प्रश्न कर रही है कि क्या उसके लिए इस रोज़े की मन्नत को निरंतर पूरा करना ज़रूरी है जबकि उसका पति विरोध कर रहा है और उसकी स्वास्थिक स्थिति कमज़ोर है ? या कि उसके ऊपर अनिवार्य यह है कि क़सम का कफ्फारा दे दे और उससे छुटकारा हासिल करले ? या कि वह बाद में उसके नियमति समय के अलावा दिनों में अलग-अलग उसकी क़ज़ा करे ? या कि वह क्या करे ?

विस्तृत उत्तर

हर प्रकार की प्रशंसा और गुणगान केवल अल्लाह तआला के लिए योग्य है।.

हर प्रकार की प्रशंसा और गुणगान केवल अल्लाह के लिए योग्य है।

"सर्व प्रथम: इस बात पर चेतावनी देना उचित है कि नज़्र (मन्नत) में प्रवेष करना मकरूह (अनेच्छिक व नापसंदीदा) या हराम (निषिद्ध) है, क्योंकि यह मुसलमान को एक ऐसी चीज़ का प्रतिबद्ध बना देता है जिसकी हो सकता है वह ताक़त न रख सके, और हो सकता है कि वह उसके लिए कष्टदायक बन जाए, जबकि वह उससे बचा हुआ (सुरक्षित) था।

मुसलमान को चाहिए कि वह नेकी के काम, जैसे रोज़ा वगैरह, बिना मन्नत माने हुए करे, इस तरह वह विस्तार में रहेगा, यदि वह चाहे तो उसे छोड़ सकता है। लेकिन यदि उसने मन्नत मान लिया है तो उसने अपने आपको प्रतिबद्ध कर लिया है और उसके ऊपर अनिवार्य है कि वह अपनी नज़्र पूरी करे यदि वह आज्ञाकारिता (नेकी करने) की नज़्र है, क्योंकि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का फरमान है : "जिसने अल्लाह की फरमांबरदारी करने की मन्नत मानी है वह उसकी फरमांबरदारी करे।" तथा आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का फरमान है : "अपनी नज़्र पूरी करो।" तथा अल्लाह का फरमान है :

[يُوفُونَ بِالنَّذْرِ] الإنسان :7

"वे नज़्र पूरी करते हैं।" (सूरतुल इन्सान : 7).

तथा अल्लाह तआला ने फरमाया :

[وَلْيُوفُوا نُذُورَهُمْ] الحج :29

"उन्हें अपनी नज़्र पूरी करनी चाहिए।" (सूरतुल हज्ज : 29)

तथा अल्लाह का कथन है :

[وَمَا أَنفَقْتُم مِنْ نَفَقَةٍ أَوْ نَذَرْتُم مِنْ نَذْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ يَعْلَمُهُ] البقرة :27

"और तुम जो कुछ भी ख़र्च करो और जो कुछ भी नज़र (मन्नत) मानो, अल्लाह उसे भली-भाँति जानता है।" (सूरतुल बक़रा : 27)

अगर नज़्र साबित हो गई और वह आज्ञाकारिता की नज़्र हो, तो वह अनिवार्य हो जाती है और उसका पूरा करना ज़रूरी हो जाता है। लेकिन रही बात उसमें प्रवेष करने से पहले की, तो मुसलमान के लिए उचित नहीं है कि वह अपने आप को उसका प्रतिबद्ध बनाए और उसमें दाखिल हो।

प्रश्न करनेवाली महिला ने जो यह उल्लेख किया है कि उसने निरंतरता के साथ ज़ुल-हिज्जा के प्राथमिक नौ दिनों के रोज़े रखने की मन्नत मानी थी, तो वह आज्ञाकारिता की मन्नत है, जिसे पूरा करना उसके लिए अनिवार्य है, और उसके पति को इस बात का अधिकार नहीं है कि उसे इससे रोक दे, क्योंकि उसका पति उसे केवल नफ्ली रोज़े से रोक सकता है। रही बात किसी निश्चित समय के साथ निर्धारित अनिवार्य रोज़े की, तो उसके पति के लिए जायज़ नहीं है कि उसे उससे रोक दे। उसने यह मन्नत मानी थी कि इन निर्धारित दिनों का रोज़ा रखेगी, अतः उसके ऊपर अनिवार्य है कि इसे पूरा करे। यदि वह कहती है कि स्वास्थिक रूप से वह इसकी ताक़त नहीं रखती है, तो यदि इसका मक़सद यह है कि वह उसके ऊपर कष्ट का कारण है, तो यह कर्तव्य पूर करने में रुकाइट नहीं बनता है यहाँ तक कि अगरचे उसके अंन्दर कष्ट व कठिनाइ ही हो तब भी वह रोज़ा रखेगी। क्योंकि उसने अपने आप पर उसे अनिवार्य कर लिया है, और यह बात सर्वज्ञात है कि रोज़े में ताक़तवर आदमी पर भी कष्ट पाया जाता है।

लेकिन यदि उसके कहने का मक़सद यह है कि वह रोज़ा रखने की ताक़त नहीं रखती है, तो जिस वर्ष वह किसी बीमारी या शारीरिक कमज़ोरी की वजह से रोज़ा रखने पर सक्षम नहीं होती है, वह क़सम का कफ्फारा अदा करेगी, लेकिन यदि वह दूसरे वर्ष रोज़ा रखने पर सक्षम हो जाती है तो उसके ऊपर रोज़ा रखना अनिवार्य होगा। इसी तरह वह करेगी।

अत: उसके लिए अपनी मन्नत को छोड़ना जायज़ नहीं है, क्योंकि उसने अपने आप पर उसे अनिवार्य कर लिया है। मुसलमान के लिए अपनी मन्नत के साथ खिलवाड़ करना शोभित नहीं है। वह मन्नत मान ले और अपने आपको उसका प्रतिबद्ध बना ले, फिर उसके बाद उससे निकलने का रास्ता ढूंढे, हीले-बहाने तलाश करे! ऐसा करना जायज़ नहीं है, क्योंकि नज़्र वाजिबात (कर्तव्यों) में से एक कर्तव्य हो गया है, जिससे बिना किसी शरई कारण के छुटकारा हासिल करना जायज़ नहीं है।

अगर ये दिन उसके मासिक धर्म के समय में पड़ जाएं तो वह उन्हें छोड़ने में क्षम्य (माज़ूर) समझी जायेगी, क्योंकि यह शरई उज़्रों में से है, उदाहरण के तौर पर यदि वह बीमार हो, तो यह एक शरई उज़्र है जो उससे इन दिनों के रोज़े को समाप्त कर देता है, लेकिन यदि ये दिन आ जायें और उसके पास कोई शरई उज़्र न हो इस प्रकार कि वह स्वस्थ हो और मासिक धर्म से पवित्र हो तो उसके ऊपर यह अनिवार्य है।" अंत हुआ।